RESEARCH FRONT

ISSN
(Print) 2320 – 6446, (Online) 2320 – 8341

# सामाजिक न्याय की अवधारणा एवं आदर्श समाज डॉ0 बी0 आर0 अम्बेडकर की दृष्टि में : एक विश्लेषण

**सम्राट अशोक, आशीष कुमार**
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

**शोध सार**

*किसी भी समाज के सम्पूर्ण विकास हेतु प्रथम आवश्यक शर्त उस समाज के प्रत्येक व्यक्ति को सर्वांगींण विकास के समान अवसर प्राप्त होना है। परन्तु बिडम्बना की बात यह है कि इस युग में भी विश्व के लगभग प्रत्येक देश में एक वर्ग ऐसे लोगों का है जो सर्वांगींण विकास से बहुत दूर जीवन की मलभूत जरूरतों की पूर्ति में ही अपना सम्पूर्ण जीवन व्यतीत कर देते हैं। भारत में यह वर्ग विभाजन जाति–व्यवस्था के रूप में हजारों वर्षों से विद्यमान रहा है। जाति–व्यवस्था भारतीय समाज का आधार है तथा यह श्रम विभाजन के सिद्धान्त के आधार पर हिन्दू धर्म को चार वर्णों (वर्गों) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र में विभाजित करती है। इनमें जहां प्रथम तीन वर्ण समस्त विशेषाधिकारों व सुविधाओं से युक्त जीवन व्यतीत करते हैं वहीं शूद्रों को दासता का जीवन व्यतीत करने के लिए छोड़ दिया गया सामाजिक विषमता का एक प्रमुख कारण समाज में शक्ति, प्रतिष्ठा, संपत्ति आदि का असमान वितरण है। 19वीं सदी के अन्त में नारायन गुरु, ज्योतिबा फुले, रामास्वामी नायर जैसे अनेक निम्न जाति में जन्म लेने वाले लोगों ने दलितों के स्वाभिमान व गरिमा के लिए संघर्ष आरम्भ किया। इस संघर्ष में सर्वाधिक प्रभावशाली व्यक्ति थे, डॉ0 भीम राव रामजी अम्बेडकर। प्रस्तुत आलेख में डॉ0 अम्बेडकर द्वारा सामाजिक न्याय एवं आदर्श समाज पर व्यक्त किये गये विचारों का व उन प्रासंगिकता की आकलन करने का प्रयास करेंगे।*

**कुंजी शब्द :** समाज, सामाजिक न्याय, विकास, लोकतन्त्र, समानता

व्यक्ति के सर्वांगीण विकास पर ही समाज का विकास निर्भर करता है। इसलिए किसी भी समाज के सर्वांगीण विकास हेतु वहां सामाजिक न्याय को स्थापित किया जाना बहुत आवश्यक है क्योंकि सामाजिक न्याय के द्वारा ही प्रत्येक व्यक्ति को अपनी क्षमतानुसार अपना विकास करने व जीवन को सही ढंग से जीने की कला सीखने के समान तथा वास्तविक अवसर प्राप्त हो सकते हैं। भारत में सामाजिक न्याय की अवधारणा का उद्भव भारतीय समाज जोकि मुख्यतः जाति व्यवस्था पर आधारित है, में व्याप्त भेदभाव व पक्षपात के प्रतिक्रिया स्वरुप उभर कर आयी। जाति व्यवस्था असमानता व शोषण से परिपूर्ण वह व्यवस्था है जिसमें एक ओर उच्च जातियों को विभिन्न विशेषाधिकार तथा सुविधायें प्राप्त हैं तो वहीं दूसरी ओर निम्न जातियों पर अनेक निर्योग्यताएं तथा प्रतिबन्ध लगा दिए गए हैं। शिक्षा तथा रोजगार चुनने की स्वतंत्रता भी समाज के सभी व्यक्तियों को समान रुप से प्राप्त नहीं थी।जिससे जहां एक ओर उच्च जातियों के सदस्य अपने सर्वांगीण विकास में सक्षम थे, वहीं निम्न जातियों के लोगों को अपना जीवनयापन भी करना मुश्किल था। मानव–मानव में इस प्रकार का भेद किसी भी प्रकार से ठीक नहीं कहा जा सकता। समाज के विकास के लिए सभी को अपने सर्वांगीण विकास का अवसर प्रदान करना बहुत आवश्यक है। जिसके लिए सामाजिक न्याय की स्थापना की जानी चाहिए। क्योंकि सामाजिक न्याय के द्वारा ही समाज या राष्ट्रके प्रत्येक नागरिक का सर्वांगीण विकास संभव है।

ISSN
(Print) 2320 – 6446, (Online) 2320 – 8341

## समाजिक न्याय की प्रासंगिकता

किसी भी राष्ट्र का सर्वांगीण विकास वहां के नागरिकों के विकास पर ही निर्भर करता है अतः राष्ट्र के विकास हेतु वहां के नागरिकों को सर्वांगीण विकास हेतु अवसर उपलब्ध कराना राष्ट्र का कर्त्तव्य है जोकि सामाजिक न्याय द्वारा ही संभव है। अतः व्यक्ति व राष्ट्र के सर्वांगीण विकास हेतु सामाजिक न्याय बहुत ही प्रासंगिक है। जन्म पर आधारित असमानता व शोषण से परिपूर्ण भारतीय समाज में समाजिक न्याय की स्थापना और भी अधिक आवश्यक हो जाती है। सामाजिक न्याय की वर्तमान प्रासंगिकता को देखते हुए भी सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश एच0एल0 दत्तू ने 03 दिसम्बर 2014 को सामाजिक मुद्दों से जुड़े मामलों के शीघ्र निपटारे के लिए 'सामाजिक न्याय पीठ' का गठन। जिसका उद्देश्य लोकहित मामलों को तेजी से अंजाम तक पहुॅचाना है। अतः सामाजिक न्याय की स्थापना न सिर्फ वर्तमान में प्रासंगिक है, अपितु यह हर समय व समाज में समाज के सभी सदस्यों को अपने सर्वागीण विकास के अवसर प्रदान करने हेतु प्रासंगिक बनी रहेगी।

## सामाजिक न्याय की आवश्यकता

समाज के सभी व्यक्तियों को अपनी क्षमतानुसार अपने सर्वांगीण विकास के अवसर प्रदान करना ही सामाजिक न्याय है। सामाजिक न्याय प्रजातन्त्र की अनिवार्य शर्तों में से एक है, अतः भारत जिसे विश्व का सबसे बड़ा लोकतन्त्र होने का गौरव प्राप्त है में सामाजिक न्याय को स्थापित किया जाना और भी अधिक आवश्यक है। सामाजिक न्याय शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग 1840 में सिसिली के पादरी लुइगी टापारेल्ली डी एजेग्लियो द्वारा किया गया था। अधिकांश सामाजिक दार्शनिकों का मानना है कि सामाजिक न्याय की अवधारणा **प्रसिद्ध अमेरिकी दार्शनिक *जॉन रॉल्स*** की किताब ***''ए थ्योरी ऑफ जस्टिस'' जीमवतल वि रनेजपबम (1971)*** के प्रकाशन के साथ अस्तित्व में आयी।

सामाजिक न्याय की अवधारणा बहुत व्यापक है। सामाजिक न्याय एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था को कहा जा सकता है जो स्वतंत्रता, समता व बन्धुत्व को स्थापित करते हुए प्रत्येक मनुष्य की गरिमा को स्वीकार करती हो। चूंकि किसी भी समाज का सम्पूर्ण विकास तब तक नहीं हो सकता जब तक कि उसके प्रत्येक नागरिक को अपने विकास के अवसर उपलब्ध न हो। इसलिए समाज के सभी वर्गों के विकास के लिए सामाजिक न्याय बहुत आवश्यक है। समाज में संस्तरण मुख्यतः दो रूपों में पाया जाता है–जाति और वर्ग। वर्ग के विपरीत जाति एक बन्द प्रस्थिति समूह है। मजूमदार एवं मदन के अनुसार, ''जाति एक बन्द वर्ग है।'' जाति व्यवस्था शोषण व दमन पर आधारित सामाजिक संस्तरण की वह व्यवस्था है जिसमें व्यक्ति की सामाजिक प्रस्थिति का निर्धारण उसके जन्म के आधार पर होता है। व्यक्ति जिस जाति में जन्म लेता है वह आजीवन उसी का सदस्य रहता है। यही नहीं जाति–व्यवस्था में जहां उच्च जातियों को विशेषाधिकार व उच्च प्रस्थिति प्राप्त होती है वहीं निम्न जातियों पर अनेक प्रकार की निर्योग्यताएं तथा प्रतिबन्ध लगाए जाते है। मनुष्य–मनुष्य में इस प्रकार का भेद किया जाना किसी भी प्रकार से उचित नहीं कहा जा सकता अतः सभी के सर्वांगीण विकास हेतु तथा विशेषाधिकारों व निर्योग्यताओं की आवृत्ति को रोकने के लिए सामाजिक न्याय बहुत आवश्यक है।

सामाजिक न्याय के आधारभूत तत्व हैं–स्वतंत्रता एवं समानता। स्वतंत्रता से आशय ''अवरोध की अनुपस्थिति'' है, जबकि समानता से तात्पर्य ''भेदभाव की अनुपस्थिति'' है। विस्तृत अर्थों में देखे तो सामाजिक न्याय का तात्पर्य समाज के कमजोर वर्ग के अधिकारों से है फिर चाहे वे किसी भी धर्म,

ISSN
(Print) 2320 – 6446, (Online) 2320 – 8341

जाति, उम्र या लिंग के हों सामाजिक न्याय की आवश्यकता समाज के इन कमजोर वर्गों को समाज की मुख्य धारा के साथ जोड़ने व अवसरों की समानता उपलब्ध कराने से है।

## सामाजिक न्याय पर डॉ0 अम्बेडकर के विचार

सामाजिक न्याय के बारे में अम्बेडकर के विचार उनकी कृतियों में पृथक रूप से कहीं भी प्राप्त नहीं होते परन्तु उनके सभी कार्य सामाजिक न्याय पर उनके विचारों को प्रतिबिम्बित करते हैं। वस्तुतः उनका मुख्य उद्देश्य एक ऐसे वर्ग विहीन व जाति विहीन समाज की स्थापना करना था जो न्याय के सिद्धान्त पर आधारित हो। भारतीय संविधान में अस्पृश्यता की समाप्ति तथा सामाजिक न्याय की स्थापना हेतु अनेक उपबन्ध किये गये हैं जिसमें डॉ0 अम्बेडकर का योगदान प्रमुख है। डॉ0 अम्बेडकर चतुर्वर्णीय ब्राह्मणवादी व्यवस्था के प्रबल आलोचक थे। मनुस्मृति पर आधारित इस व्यवस्था में निम्न जाति (अस्पृश्यों) के हितों की रक्षा की कोई व्यवस्था नहीं है। वे मनुस्मृति को अन्याय, असमानता व शोषण का प्रतीक मानते थे तथा उनके नेतृत्व में मनुस्मृति को जलाया भी गया। डॉ0 अम्बेडकर, जिन्होंने स्वयं सम्पूर्ण जीवन जातीय भेद–भाव के कड़वे घूँट को पिया ने ब्राह्मणवादी संकीर्ण विचारधारा, दुराग्रह, पाखण्ड और असमानता पर आधारित जाति–व्यवस्था की कटु आलोचना की।

अम्बेडकर के हृदय में समाज के अस्पृश्यों के प्रति गहन सहानुभूति थी तथा वे हर प्रकार से उनके उत्थान के लिए प्रयत्नशील थे। भारतीय सामाजिक व्यवस्था की असमानता, भेद–भाव, पक्षपात पूर्ण अन्याय और अत्याचार पर आधारित जाति व्यवस्था को समाप्त करने तथा सामाजिक न्याय की स्थापना के लिए वे हर सम्भव प्रयास करना चाहते थे। 12 नवम्बर 1930 को ब्रिटिश प्रधानमन्त्री रम्से मैकडोनाल्ड की अध्यक्षता में गोलमेज कांफ्रेस की शुरूआत हुयी जिसमें डॉ0 अम्बेडकर का भाषण वेदना से पूर्ण मर्म स्पर्शी तथा सबका ध्यान आकर्षित करने वाला था। ''मैं जिस दलितों के प्रतिनिधि की हैसियत से यहां खड़ा हूँ, उनकी संख्या भारत की जनसंख्या का पांचवाँ भाग है अर्थात् इग्लैण्ड, फ्रांस की जनसंख्या के बराबर है, परन्तु मेरे उन दलित भाइयों की स्थिति गुलामों से भी बद्तर है। गुलामों के मालिक उनको छू सकते हैं परन्तु हमको छूना भी पाप समझा जाता है। ब्रिटिश राज्य से पहले अस्पृश्यता के कारण हम घृणित अवस्था में थे क्या ब्रिटिश सरकार ने हमारी हालत सुधारने के लिए कुछ किया है। पहले हम गाँव के कुएं से पानी नहीं भर सकते थे क्या ब्रिटिश सरकार ने हमें वह अधिकार दिलाया है? पहले हम मन्दिर में प्रवेश नहीं कर सकते थे, क्या अब हम प्रवेश कर सकते हैं? पहले हमें पुलिस दल में शामिल नहीं किया जाता था, क्या ब्रिटिश सरकार हमें पुलिस दल में शामिल करती है। पहले हम सैनिक सेवा नहीं करते थे, क्या आज हमारे लिए सेना के दरवाजे खुले हैं? इन प्रश्नों में से किसी का उत्तर हाँ में नहीं दिया जा सकता। 150 वर्ष के ब्रिटिश राज्य में हमारी हालत जैसी थी, वैसी ही रही है। ऐसी सरकार से हमारा क्या भला होगा। आज दलित भी मौजूदा राज्य के स्थान पर जनता के लिए जनता द्वारा जनता का राज्य चाहते हैं। मजदूर और किसानों का शोषण करने वाले पूंजीपति और जमींदारों की रक्षक सरकार हम नहीं चाहते हैं। हमारे दुःख हम स्वयं दूर करेंगे और उसके लिए हमारे हाथों में राजनैतिक सत्ता होनी चाहिए। मौजूदा हालात में ऐसा विधान व्यवहार नहीं हो सकता, जो देश के बहुमत को स्वीकार्य न हो। वह जमाना बीत गया, जब आप फैसला करते थे और भारत वर्ष मानता था वह जमाना अब कभी नहीं लौटेगा। (गोलमेज कांफ्रेस में डॉ0 अम्बेडकर, 1930) गोलमेज सम्मेलन में दिया गया उपरोक्त भाषण का अंश जहां अम्बेडकर के मन में दलितों की निम्न स्थिति के कारण असंतोष प्रकट करता है वहीं उनकी वेदना को भी दर्शाता है। अम्बेडकर दलितों की स्थिति में सुधार हेतु जाति व्यवस्था जो कि अन्याय व शोषण पर आधारित व्यवस्था है के उन्मूलन और सामाजिक न्याय की स्थापना पर बल देते हैं। अपनी पुस्तक ''शूद्र कौन थे?'' में अम्बेडकर ने

ISSN
(Print) 2320 – 6446, (Online) 2320 – 8341

अस्पृश्यों के इतिहास पर प्रकाश डालते हुए यह तर्क दिये कि शूद्र मूलतः आर्यों के क्षत्रिय वर्ग से सम्बन्धित हैं तथा ब्राह्मणों ने इन्हें निम्नता प्रदान की। उनके अनुसार ब्राह्मणों और क्षत्रियों के मध्य वर्चस्व के लिए होने वाले यद्धों के फलस्वरूप शूद्रों की उत्पत्ति हुई, जिन्हें ब्राह्मणवादी चातुर्वर्ण्य व्यवस्था के निम्नतम स्थान पर रखा गया तथा उन पर अनेक कलंक व निर्योग्यताएं लाद दी गयी।

सामाजिक न्याय के बारे में अपने विचारों को **वर्गबोन** को उद्धृत करते हुए उन्होंने स्पष्ट किया है कि न्याय साधारणतः स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व का एक दूसरा नाम है। समता के बारे में यद्यपि वे यह स्वीकार करते हैं कि सभी मनुष्य शारीरिक व मानसिक रूप से समान नहीं हो सकते परन्तु वे अवसर की समानता की बात करते हैं ताकि सभी को अपने सर्वांगीण विकास का अवसर प्राप्त हो सके। भारत को विश्व का सबसे बड़ा लोकतन्त्र होने का गौरव प्राप्त है। अम्बेडकर लोकतन्त्र के बारे में कुछ भिन्न विचार रखते थे, पूना जिला पुस्तकालय में 22 दिसम्बर 1952 को डॉ0 भीमराव अम्बेडकर द्वारा लोकतंत्र पर अपने विचार कुछ इन शब्दों में रखे गए "मेरे विचार लोकतंत्र शासन की वह विधा है जिसके जरिये बिना किसी खून–खराबे के सामाजिक जीवन में परिवर्तन लाए जा सकते हैं"(योजना, दिसम्बर 2013 में आनन्द तेल्तुंब्डे के लेख से उद्घृत)। वे इसे स्वतन्त्रता, समानता एवं बन्धुत्व के जरिए आदर्श समाज की स्थापना का साधन मानते थे। उनका कहना था : ''जनवरी की 26 तारीख को हम अंतर्विरोधों के युग में प्रवेश करेंगे। राजनीति में समता और सामाजिक– आर्थिक जीवन में विषमता होगी। राजनीति में हम एक व्यक्ति की कीमत एक वोट के आधार पर आंकेगे। लेकिन सामाजिक और आर्थिक जगत में विसमतामूलक संरचनाओं के कारण हम एक व्यक्ति–एक मूल्य के उसूल को नकारना जारी रखेंगे। अंतर्विरोधों की इस गिरफ्त में हम कब तक फंसे रहेंगे? सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में हम समता को कब तक ठुकराते रहेंगे? अगर हमने लंबे अरसे तक समता को अस्वीकार करना जारी रखा तो इसका नतीजा हमारे राजनीतिक लोकतंत्र के संकटग्रस्त होने में ही निकलेगा।''(कांस्टीटुएंट एसेंबली डिबेट खण्ड दस, ऑफीशियल रिर्पोट) अम्बेडकर की न्याय की अवधारणा 1789 की फ्रांसीसी क्रांति से प्रेरित थी जिसे वे सामाजिक लोकतंत्र के माध्यम से स्थापित करना चाहते थे। फ्रांसीसी क्रांति मानव गरिमा की स्थापना के लिए मानव संघर्ष के इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना है। यह असामानता व शोषण के विरुद्ध व स्वतंत्रता, समानता व भ्रातृत्व पर आधारित लोकतांत्रिक व्यवस्था की स्थापना के लिए जनसंघर्ष था, जिसका प्रभाव न सिर्फ फ्रांस अपितु विश्व के सभी देशों पर पड़ा।सामाजिक न्याय की स्थापना हेतु अम्बेडकर लोकतंत्र पर बल देते हैं।

अम्बेडकर राजनैतिक लोकतन्त्र के साथ ही साथ सामाजिक व आर्थिक लोकतन्त्र पर भी बल देते हैं। क्योंकि उनका मानना था कि राजनीतिक लोकतन्त्र की स्थिरता सामाजिक व आर्थिक लोकतन्त्र पर आधारित है।देश का संविधान सामाजिक न्याय की स्थापना के लिये प्रतिबद्ध हैं। भारतीय संविधान की प्रस्तावना ''हम भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुसत्ता समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष, लोकतान्त्रिक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतन्त्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने के लिए तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखण्डता सुनिश्चित करने वाली बन्धुता बढ़ाने के लिए दृढ़ संकल्प होकर इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवम्बर, 1949 ई0 को एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मसमर्पित करते हैं।''

***भारतीय संविधान की*** प्रस्तावना सामाजिक न्याय पर अम्बेडकर के विचारों को प्रतिबिम्बित करती है। जिसमें सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक न्याय पर जोर दिया गया है। अम्बेडकर निम्न जातियों (अस्पृश्यों) की सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक स्थिति से भली प्रकार परिचित थे, यही कारण है कि

ISSN
(Print) 2320 – 6446, (Online) 2320 – 8341

उन्होंने कानूनी व संवैधानिक उपबन्धों के जरिये सामाजिक न्याय की स्थापना पर बल दिया अम्बेडकर के विचारानुसार एक व्यक्ति एक मत के सिद्धान्त को स्वीकार करके व्यक्ति को राजनैतिक क्षेत्र में समानता तो प्रदान कर दी, किन्तु सामाजिक और आर्थिक क्षेत्रों में असमानता अभी भी बनी हुई है। उन्होंने राजनैतिक और सामाजिक जीवन के बीच इस अन्तर्विरोध के प्रति लोगों को आगाह किया और कहा कि इसे यथा शीघ्र समाप्त किया जाना चाहिए। ***नन्दू राम*** (2013) में अम्बेडकर की सामाजिक न्याय, स्वतन्त्रता, समानता तथा बन्धुत्व की धारणा की भारतीय समाज में व्यवहार्यता की गहन समीक्षा करते हुए कहा है कि अम्बेडकर के ये विचार मात्र भारतीय समाज के लिए प्रासंगिक नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व के लिए प्रासंगिक हैं।

## अम्बेडकर की दृष्टि में आदर्श समाज

अम्बेडकर की बहुत बड़ी चिन्ता अस्पृश्यों की दयनीय स्थिति को लेकर थी। उनका मानना था कि इस दयनीय स्थिति का कारण हिन्दू धर्म व जाति–व्यवस्था थी। अम्बेडकर का मानना था कि असमानता व शोषण पर आधारित जाति–व्यवस्था के रहते हुए आदर्श समाज की स्थापना नहीं हो सकती। अपनी पुस्तक ''जाति भेद का उच्छेद'' में आदर्श समाज के बारे में अपने विचार रखते हुए अम्बेडकर ने कहा कि, ''अगर मुझसे पूंछे तो मेरा आदर्श होगा एक ऐसा समाज जो, आजादी, बराबरी और भाईचारे पर आधारित हो। मैं किसी अन्य की कल्पना नहीं कर सकता। एक आदर्श समाज गतिशील होना चाहिए। यह ऐसे साधनों से पूर्ण होना चाहिए ताकि एक भाग में होने वाला परिवर्तन दूसरे भाग में पहुंचाया जा सके।''

## निष्कर्ष

भारत में सामाजिक न्याय की स्थापना में अम्बेडकर का योगदान प्रमुख है अम्बेडकर सामाजिक एवं आर्थिक अन्याय से मुक्त समाज की स्थापना करना चाहते थे उन्होंने स्वतंत्रता, समानता तथा बन्धुत्व की स्थापना पर बल दिया। वे सामाजिक न्याय की स्थापना सामाजिक लोकतंत्र के माध्यम से करना चाहते थे तथा अवसर की समानता पर बल देते थे। जिसके लिए उन्होंने ब्राह्मणवाद तथा चातुर्वर्ण्य व्यवस्था की कटु आलोचना करते हुए सामाजिक न्याय की स्थापना पर बल दिया तथा जातिवाद का प्रबल विरोध किया जो कि असमानता तथा शोषण की व्यवस्था है। अम्बेडकर के सामाजिक न्याय सम्बन्धी विचार न सिर्फ भारत अपितु सम्पूर्ण विश्व के लिए प्रासंगिक है। क्योकि अम्बेडकर ने रूढिवादी, शोषण व दमन से परिपूर्ण सामाजिक व्यवस्था को समाप्त कर एक ऐसे समाज की स्थापना पर बल दिया जो स्वतन्त्रता, समानता तथा भाईचारे पर आधारित तथा गतिशील हो, ताकि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी क्षमतानुसार विकास के अवसर प्राप्त हो सके। इस प्रकार स्पष्ट है कि अम्बेडकर का सम्पूर्ण बल समता पर आधारित समाज की स्थापना पर रहा है। जब तक समाज के लोगों को मात्र जन्म के आधार पर अपने विकास के अवसरों से वंचित किया जाता रहेगा, तब तक समता पर आधारित एक गतिशील आदर्श समाज की स्थापना सम्भव नहीं है।

## सन्दर्भ सूची


- चौधरी, सुकान्त के0, ''अम्बेडकर एण्ड फ्यूचर ऑफ दलित्स'' (संपादित), 2013, सीरियल्स पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
- राम नन्दू 2013 इन, सुकान्त के0 चौधरी, ''अम्बेडकर एण्ड फ्यूचर ऑफ दलित्स'' (संपादित), 2013, सीरियल्स पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।

ISSN
(Print) 2320 – 6446, (Online) 2320 – 8341


- गेल ओमवेट, ''अम्बेडकर प्रबुद्ध भारत की ओर'', 2005, पेंगुइन बुक्स इण्डिया प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली।
- रावत हरिकृष्ण, ''समाजशास्त्रीय चिन्तक एवं सिद्धान्तकार'', 2009, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर।
- अम्बेडकर बी0 आर0, ''जातिभेद का उच्छेद'', 2010, गौतम बुक सेन्टर, नई दिल्ली।
- अम्बेडकर बी0 आर0, ''शूद्रों की खोज'', 2011, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली।
- गौतम आकाश, ''दलित राजनीति : बहुजन समाज पार्टी का अध्ययन'', 2005–06 एम0 फिल0 शोध प्रबन्ध, लखनऊ विश्वविद्यालय लखनऊ।
- योजना दिसम्बर, 2013,
- वर्ल्ड फोकस, दिसम्बर 2013
- बिसवाल, तपन : (2009) *मानवाधिकार जेण्डर एवं पर्यावरण*: प्रकाशक बीवा बुक्स नई दिल्ली,